The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 8 | August 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

भारतीय संघीय लोकतंत्र में चुनाव: मुद्दे और चुनौतियां

डॉ0 धीरेन्द्र कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), एम0 जी0 एम0 कॉलेज, संभल

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.17120382

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 19-08-2025

Published: 10-09-2025

Keywords:

निर्वाचन आयोग, राजनीतिक दल, चुनावी बॉन्ड, वन नेशन वन इलेक्शन, कल्याणकारी योजनाएं व मुक्त रेवड़ियां

ABSTRACT

भारतीय संघीय लोकतंत्र में चुनाव ही वह माध्यम हैं, जिसके द्वारा केंद्रीय, राज्यों और पंचायतों के स्तर की सत्ताओं का हस्तांतरण शांतिपूर्वक तरीके किया जाता है। लोकतंत्र में चुनाव उत्सव के समान होना चाहिए, चूंकि लोकतंत्र का मुख्य उद्देश्य 'जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन है' फिर भी भारत जैसे विश्व की सबसे बड़ी आबादी वाले देश में शासन की बागडोर जनता स्वयं अपने हाथों में लेने के स्थान पर, अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से, अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने की कोशिश करती है। भारत एक बहु दलीय व्यवस्था वाला देश है जिसमें कई राजनीतिक दल चुनाव में, अपने चुनावी घोषणा पत्रों के माध्यम से भारतीय मतदाताओं के समक्ष उपस्थित होते हैं। चुनाव में इन राजनीतिक दलों के बीच स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव करवाने की जिम्मेवारी हमारे संविधान द्वारा चुनाव आयोग को सौंपी गई है। फिर भी हमारे देश में चुनाव को स्वतंत्र एवं निष्पक्ष कराने के लिए चुनाव आयोग के अतरिक्त अन्य व्यवस्थाओं के द्वारा भी सहयोग प्रदान किया जाता है, संविधान द्वारा, न्यायपालिक के निर्णयों द्वारा, संसद के बनाए गए कानूनों द्वारा एवं स्वतंत्र प्रेस द्वारा।

महान अमेरिकी दार्शनिक हेनरी थोरो का मानना ठीक था कि "राज्य का संचालन उन व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिए जिनमें मनुष्य के कल्याण और कर्त्तव्यपरायणता की भावना हो यह व्यक्ति अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए निजी हितों का त्याग करने को भी तत्पर होना चाहिए" किसी ने तोरो से पूछा कि यदि ऐसा नहीं हुआ तो थोरो ने जवाब दिया कि तो हमें ऐसी राज्य सत्ता का सहयोग नहीं करना चाहिए। फिर चाहे इसके लिए हमें कितना भी कष्ट क्यों न सहना पड़े। आज हम इस विचार से प्रेरणा लेकर किसी भी राजनीतिक दल को सत्ता से बाहर कर सकते हैं।

चूंकि लोकतंत्र में बहुमत प्राप्त दल ही सरकार बनाता है, अतः इन दलों में बहुमत प्राप्त करने के लिए कई बार तो गैर कानूनी विकल्पों को भी अपनाया जाता रहा है, जिन्हें रोकने का अधिकार संविधान द्वारा निर्वाचन आयोग को सौंपा गया है। चुनाव को निष्पक्षता से कराने में निर्वाचन आयोग के साथ ही साथ हमारी न्यायपालिका भी समय समय पर अपने आदेशों एवं दिशानिर्देशों के माध्यम से यह काम करती रही है। इसी प्रकार केंद्रीय सूचना व प्रसारण और गृह मंत्रालय ने राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा बताते हुए 31 जनवरी 2023 को मीडिया वन चैनल के प्रसारण पर रोक लगा दिया था। जिसकी सुनवाई उपरांत, सुप्रीम कोर्ट ने अप्रैल 2023 को 'मीडिया वन चैनल' के प्रसारण पर लगा केंद्र सरकार का प्रतिबंध हटाते हुए कहा कि 'प्रेस का कर्तव्य देश के सामने सच बोलना है, इससे राष्ट्र को कोई खतरा नहीं है। क्योंकि मजबूत लोकतंत्र के लिए प्रेस की आज़ादी जरूरी है, साथ ही सरकारी नीतियों की आलोचना करना संप्रभुता का विरोध करना नहीं है।' सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय में यह भी कहा कि 'प्रेस का कर्तव्य है कि वह सत्ता के सामने सच लाए। नागरिकों के सामने कठोर तथ्य पेश करे, जिससे वे लोकतंत्र को सही दिशा में ले जाने वाला विकल्प चुन सकें।' साथ ही पीठ ने कहा कि 'सामाजिक आर्थिक से राजनीतिक विचारधाराओं तक के मुद्दों पर एकरूपता वाला दृष्टिकोण लोकतंत्र के लिए बड़ा खतरा पैदा करेगा। साथ ही गृह मंत्रालय को नसीहत दी कि बिना किसी ठोस तत्व के राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे के नाम पर हवाई दावे ना करें। दरअसल ऐसा कोई भी सुधार राजनीतिक वर्ग के भीतर से आना चाहिए। क्या राजनीतिक दल व राजनेता इसके लिए तैयार हैं? यह विचारणीय प्रश्न है क्योंकि सत्ता प्राप्त करने के लिए बहुमत का गणित हल करना पड़ता है अतः इसके लिए राजनीतिक दल जाति, धर्म, क्षेत्र इत्यादि साधनों का सहारा लेने में गुरेज नहीं करते हैं। फिर भी इन राजनीतिक दलों में से जिस राजनीतिक दल को भारतीय मतदाता सत्ता सौंपते हैं, वह बहुमत प्राप्त दल बिना भेदभाव के भारत के सभी नागरिकों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने की कोशिश करता है। इस प्रकार लोकतांत्रिक चुनाव हमारे देश की सरकारों को जनहितकरी बनाये रखने के लिए बाध्यकारी माध्यम हैं। हालांकि कई बार सरकारें जनहित के कार्य को करने में अपने दल के लाभ एवं हानि को सामने रखकर करते हैं ताकि उनका वोट बैंक बना रहे, जो एक तरह से लोकतंत्र के लिए हमेशा से एक चुनौती का विषय रहा है।

लोकतंत्र में चुनाव एक महत्वपूर्ण उत्सव है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में यह तथ्य सामने आए हैं कि हर अगला चुनाव अपने पिछले चुनाव से अधिक खर्चीला होता जा रहा है, जो लोकतंत्र में एक बदनुमा दाग है। हालांकि निर्वाचन आयोग के द्वारा लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों के लिए अधिकतम खर्च की सीमा निर्धारित की गई है, फिर भी व्यावहारिक धरातल पर इसका उल्लंघन खुलेआम देखा जा सकता है। भारत के 2009 के आम चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा दो अरब डालर खर्च किया गया। यह आंकड़ा 2014 में पांच अरब और 2019 तक 8.6 अरब डालर तक पहुंच गया है। 75 साल की संसदीय यात्रा में वर्ष 2024 का लोकसभा चुनाव एक नया विश्व रिकॉर्ड बनाया क्योंकि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के देश की 1.431 अरब की आबादी में से अनुमानतः एक अरब लोग अपने

लोकतांत्रिक अधिकार यानी मतदान का उपयोग करने के पात्र हुए। वर्ष 2024 के आम चुनाव में 9 करोड़ से अधिक नए मतदाता बने जिससे नए जुड़े मतदाताओं को हर पार्टी अपने साथ जोड़ने के लिए उनके हित के अनुसार घोषणाएं की थी फिर भी अंततः एन डी ए ही इसमें सफल हुई। क्योंकि इन मतदाताओं के लिए गर्व ज्यादा मायने रखा, इसलिए इन्होंने जी-20 तथा चंदयान की सफलताओं को ज्यादा वरीयता दी तथा मोदी के पक्ष में वोट किया। हालांकि रोजगार, महंगाई तथा अपने भविष्य को लेकर युवाओं में मोदी सरकार से नाराजगी भी थी, जिसे विपक्षी पार्टियों ने कैश किया। 2024 में सम्पन्न 18वीं लोक सभा का चुनाव भी काफी खर्चीला रहा है, क्योंकि यह 1951-52 में हुए पहले लोकसभा चुनाव के बाद से अब तक का सबसे लंबा चलने वाला चुनाव था, जो सात चरणों में, कुल 44 दिनों तक चला। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को सर्व सुलभ बनाने के लिए इसे कम खर्चीला बनाना होगा एवं साथ ही साथ देश के विकास को अवरुद्ध होने से रोकने के लिए चुनाव कम दिनों में संपन्न कराने की कोशिश करनी होगी।

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के अनुसार 2021-22 में देश में राष्ट्रीय दलों की आय का 60 फ़ीसदी अज्ञात स्रोत से आया और यह राशि 2.172 करोड रुपए से अधिक है। इसमें कहीं दो राय नहीं की चुनिंदा सुधारो के बावजूद दशकों से देश में चुनावी खर्च में पारदर्शिता की कमी रही है। जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 धारा 29 (सी) के मुताबिक, राजनीतिक दलों के कोषाध्यक्षों को ₹20000 से अधिक के किसी भी योगदान के दस्तावेज चुनाव आयोग से साझा करना होता है। 1968 में इंदिरा गांधी की पहल पर राजनीतिक दलों को कॉर्पोरेट चंदे पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। बरहाल 1985 में इसे पुनः वैध कर दिया गया। 1979 तक राजनीतिक दलों को आय और संपत्ति कारों से भी छूट हासिल थी। हालांकि वे वार्षिक रिटर्न दाखिल करते थे और ₹10000 से अधिक के दान और उसके दानदाताओं की पहचान का खुलासा करते थे। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेई ने एक बार कहा था कि भारत में हर विधायक अपने करियर की शुरुआत झूठ रिटर्न फाइलिंग से करता है जो लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है लोकतंत्र और मतदान की सुचिता के लिए इस दिशा में ठोस और ईमानदार पहल समय की मांग है। कहना नहीं होगा कि इस मामले में बाद के संशोधनों ने निगमों और वर्तमान में राजनीतिक दलों की गोपनीयता को सामान्य नागरिकों के सूचना के अधिकार पर प्राथमिकता दी है। जाहिर तौर पर इससे स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव कराने की हमारी क्षमता प्रभावित हुई है। राजनीतिक दलों को अब आयकर विभाग और चुनाव आयोग को वार्षिक आय-व्यय का ब्योरा देना तो जरूरी है, लेकिन वह अपने धन के स्रोतों का विस्तृत विवरण देने के लिए बाध्य नहीं हैं। इस प्रकार हमारे पास चुनावी खर्च और इसमें योगदान के खुलासे सीमित हैं। अतः इस मामले में चुनावी बांड रामबाण साबित नहीं हुआ है। हमें चुनाव के दौरान उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों के लिए खर्च की सीमाओं को यथार्थवादी एवं प्रासंगिक बनाने की कोशिश करनी चाहिए। डिजिटल लेनदेन की अनिवार्यता के साथ ₹2000 से ऊपर के सभी दान

का स्वागत किया जाना चाहिए। इस तरह के प्रावधानों की वजह से लोकतंत्र के लिए जरूरी छोटे दलों के लिए खेल का मैदान न्यायपूर्ण हो जाएगा और निर्दलीय उम्मीदवारों के पास सफलता का अधिक उचित अवसर होगा।

2018 में चुनावी बांड योजना को वित्त अधिनियम (2017) के जरिए पेश किया गया था और इसके जरिए लोगों, संस्थाओं या कंपनियों द्वारा कर मुक्त चुनावी बांड की खरीद का रास्ता खोला गया था। इसमें न तो क्रेता और न ही राजनीतिक दल को यह बताने की जरूरत है कि दान किसे दिया गया है। इसी बीच भारत में चुनावों की विदेशी फंडिंग भी जारी है। यह विडंबना ही है कि एनजीओ चलाने वाले भारतीयों को विदेशी चंदा प्राप्त करने के लिए कई चक्कर लगाने पड़ते हैं, जबकि हमारे राजनीतिक दलों को कानूनन विदेशी चंदा प्राप्त करने की इजाजत है। इसलिए चुनाव के लिए सरकारी फंडिंग एक ऐसा विचार है, जिस पर गंभीरता से विचार करने का समय आ गया है। यह पश्चिम में पहले से व्यापक रूप से प्रचलित है जैसे फ्रांस, नीदरलैंड, स्वीडन। हालांकि भारत के संदर्भ में यह कोई नया विचार नहीं है, क्योंकि 1990 में चुनाव सुधारो पर दिनेश गोस्वामी समिति ने सिफारिश की थी कि चुनिंदा खर्चों के लिए राज्य वित्त पोषण करें। इसके बाद 1998 से आंशिक राज्य सब्सिडी दी भी गई थी, जैसे राज्य के स्वामित्व वाले टेलीविजन और रेडियो नेटवर्क पर खाली समय का आवंटन एक ऐसी ही पहल थी। 1998 में चुनाव के राज्य वित्त पोषण पर इंद्रजीत गुप्ता समिति ने भी सिफारिश की थी कि चुनाव के दौरान मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों को मुक्त एयर टाइम साझा करने की अनिवार्यता को निजी चैनलों तक विस्तृत और इसके लिए जरूरी सब्सिडी मुहैया कराई जानी चाहिए।

इस प्रकार राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों की निजी चंदे पर निर्भरता कम करने के लिए हमें चुनावों के लिए सरकारी फंडिंग की दिशा में बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार चुनावी खर्च की मालीनता को दूर किया जा सकता है, साथ ही इससे वैसे उम्मीदवारों को भी चुनाव मैदान में उतरने में बढ़ावा मिलेगा, जो स्वच्छ राजनीति और नीति निर्माण पर बहस को आगे बढ़ाने में गंभीरता के साथ दिलचस्पी रखते हैं।

भारतीय लोकतंत्र में जनता के प्रतिनिधि सदन में जनता के मुद्दे और उनकी समस्याओं को उठाने के लिए चुने जाते रहे हैं, लेकिन कई बार यह भी देखने को मिलता है कि हमारे चुने गए प्रतिनिधि संसद में मुठभेड़ करते दिखाई पड़ते हैं हालांकि मुठभेड़ हमेशा नकारात्मक अर्थ में ही नहीं होती कई बार उसके सकारात्मक प्रयोजन भी होते हैं जैसे कुछ योजनागत कार्यों, मुद्दों और जनाधिकारों के लिए भी कोई सांसद सवाल जवाबों की मुठभेड़ करता है, तो वह अपने दायित्वबोध को ही प्रकट करता है। सांसद रहे भालचंद्र मुंगेर राज्यसभा में कमजोर वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर आए थे। संसद में वह उस परंपरा के वाहक हैं, जिसमें दलितों, आदिवासियों के हक में मुठभेड़ करने वाले डॉक्टर अंबेडकर के बाद कई नेता आए, पर वैचारिक मुहिम में वह कमजोर रहे। दलित आदिवासियों एवं अनसूचित जातियों की ओर से यह शिकायत आम रहती है कि कोटे से संसद में जाने वाले उनके प्रतिनिधि उनके सवालों को लेकर सरकारों से मुठभेड़ नहीं करते। वे जिन दलों से चुनकर जाते हैं, उनके लिए ही काम करते नजर

आते हैं। वे दलित उत्पीड़न, दुर्लभ होती शिक्षा व्यवस्था और कला- संस्कृति के तमाम लोकतांत्रिक क्षेत्रों में संविधानिक भागीदारी के लिए मुठभेड़ नहीं करते हैं। कई दफा तो वे मौलिक अधिकारों के सवाल तक नहीं उठाते। वर्तमान में हम, संसद में नकारात्मक मुठभेड देखने के अभ्यस्त होते जा रहे हैं। पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व प्रधान न्यायाधीश एन वी रमना ने संसद में गुणवत्तापूर्ण बहस ना होने को खेदजनक माना। गुणवत्ता पूर्ण बहस की कमी के कारण इन दिनों बनाए जा रहे कानूनों में स्पष्टता की कमी भी देखी जा सकती है। इसलिए कोटे से निर्वाचित जन प्रतिनिधियों को अपने मतदाताओं की मांगों एवं समस्याओं को पार्टी लाइन से जरूरत पड़े तो इतर जा कर भी उठानी चाहिए क्योंकि उनका अस्तित्व उन्हीं मतदाताओं के लिए है। साथ ही संसद भवन में विधेयकों पर गहन विचार विमर्श के उपरांत स्पष्टता के साथ ही कानून बनाए जाएं।

आज कल राजनीतिक दलों द्वारा, वोट ध्रुवीकरण के लिए नफ़रती भाषणों तक का सहारा लेने से गुरेज नहीं किया जा रहा है जो कि लोकतंत्र के लिए एक प्रमुख चुनौतियों के समान है। मार्च 2023 के अपने आदेश में सुप्रीम कोर्ट ने टिप्पणी की थी कि नफ़रती भाषणों की जड़ में राजनीति और धर्म का घोलमेल ही जिम्मेवार है, साथ ही कहा कि राजनीति को धर्म से अलग कर दिया जाए तो इस पर अंकुश लग सकता है, दरअसल ऐसा कोई भी सुधार राजनीतिक दलों और नेताओं के भीतर से आना चाहिए। क्या राजनीतिक दल व राजनेता इसके लिए तैयार हैं। हालांकि एक मत धर्म और राजनीति को लेकर महात्मा गांधी का भी है, जो राजनीति और धर्म के समन्वय को समाज के लिए अच्छा मानते थे। गांधी जी का मानना था कि अगर राजनीतिक व्यक्ति धर्म के व्यापक अर्थ (नैतिकता, न्याय, कर्त्तव्यपरायणता, सहिष्णुता) को मानता है, तो वह राजनीतिक व्यक्ति कोई भी गलत कार्य करने की नहीं सोचेगा, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गांधी जी ने धर्म और राजनीति के सहअस्तित्व को ठीक माना था। लेकिन वर्तमान समय में धर्म के व्यापक अर्थ के स्थान पर धर्म के संकीर्ण अर्थ को अपनाते हुए, राजनीतिक दल व राजनेता धर्म को सिर्फ राजनीतिक सत्ता प्राप्ति का साधन मात्र मान कर कार्य करते हुए देखे जा सकते हैं। वर्तमान समय में ज़्यादातर राजनीति दल धर्म के सही अर्थ अर्थात् नैतिकता, न्याय, कर्त्तव्यपरायणता, सहिष्णुता इत्यादि की जगह, जिस धर्म को मानने वाले लोगों की संख्या ज़्यादा होती है उसी को वरीयता दे कर सत्ता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, जो एक तरह से हमारे संविधान के द्वारा प्रदान किए गए धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन प्रतीत होता है। इसलिए हमारी न्यायपालिका को अपने निर्णय में धर्म और राजनीति के घोलमेल को समाप्त करने के लिए राजनीतिक दलों से कहना पड़ता है। हालांकि अगर सभी राजनेता एवं राजनीतिक दल धर्म के संबंध में गांधीवादी दृष्टिकोण को आत्मसात कर लें तो, कभी भी धर्म और राजनीति को अलग करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

चुनाव के समय कई राजनीतिक दल, सत्ता की गद्दी पर आसानी से अपनी पहुंच बनाने के लिए मुक्ति की चीज देने का वादा करते हैं। सुप्रीम कोर्ट के पूर्व सीजेआई एन वी रमना की अध्यक्षता में पीठ ने सुनवाई करते हुए

कहा था कि चुनावी रेवड़ियों के मुद्दे पर व्यापक सुनवाई की आवश्यकता है। इस याचिका को भाजपा नेता व वकील अश्विनी कुमार उपाध्याय ने दायर किया था। इसमें चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों को चुनाव अभियानों के दौरान मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए रेवड़ियों का वादा करने की अनुमति नहीं देने का निर्देश देने की मांग की गई थी। इस प्रकार सुप्रीम कोर्ट सुब्रमण्यम बालाजी बनाम तमिलनाडु मामले में दिए गए अपने ही फैसले में अर्थात् चुनावी वादों की प्रथाएं जनप्रतिनिधित्व कानून के तहत भ्रष्ट आचरण नहीं है को बदले का निर्णय किया। अश्वनी कुमार उपाध्याय की याचिका का विरोध आप ने दिल्ली तथा पंजाब में किया था तथा कहा था कि लोक कल्याणकारी योजनाओं को मुक्त रेवड़ी की संज्ञा नहीं दी जा सकती। जबकि याचिका कर्ता का कहना था कि ऐसी घोषणाओं से राज्य की आर्थिक स्थिति पर पढ़ने वाले असर की जानकारी मतदाताओं को दी जानी चाहिए। हालांकि मुक्त जैसी कोई भी चीज नहीं होती है, क्योंकि हर मुक्ति की चीजों के लिए करदाता भुगतान करता है या देश के राजस्व का प्रयोग किया जाता है। सरकारों को देश के संसाधनों का प्रयोग तार्किक रूप से करना चाहिए, ना कि अपने राजनीतिक नफा नुकसान के अनुसार, क्योंकि देश पहले है राजनीतिक दल बाद में। कोई भी राजनीतिक दल देश के विकास के लिए होता है ना कि देश, दल के विकास के लिए। साथ ही प्रत्येक नागरिक के मन में निडर होकर मतदान करने का विश्वास पैदा करके ही देश में वास्तविक लोकतंत्र की बहाली की जा सकती है।

वर्तमान समय में राजनीति को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाले विषयों में एक है चुनावी रेवड़ियों। चुनावी रेवड़ियों के मामले में कोई भी राजनीतिक पार्टी पाक-साफ होने का दवा नहीं कर सकती है। पॉलिटकल पार्टी हमेशा ही चुनावों से पहले मुफ्त स्कीमों की घोषणाएं करती हैं। अधिक वोट्स पाने के लिए पॉलिटिकल पार्टियां मुफ्त की योजनाओं पर निर्भर रहती हैं और इसका एक उदाहरण हाल ही में हुए दिल्ली चुनावों में भी देखा गया है। आश्चर्य है कि राजनीतिक दल जो वादे करते हैं उनकी क्या लागत होगी, इस पर विचार करने की वह जरूरत भी नहीं समझते। चुनावी वादों को पूरा करने की चुनौती राज्यों के बजट में झलकती है, इसलिए राजनीतिक दलों को अधिकतम ऐसे वादे करने चाहिए जिनसे देश की आधारभूत संरचना का निर्माण हो, जो देश के सभी लोगों को लाभ पहुंचाए, साथ ही देश का भी संरचनात्मक विकास होगा, इसलिए अब यह समझने वाली बात है कि इन मुक्त की रियायतों की भी कीमत होती है। इनकी लागत ज्यादा कर लगाकर पुरी की जाती है, जिसे मतदाताओं को जीएसटी या ईंधन की अधिक कीमतों के रूप में या अतिरिक्त उधर के रूप में भुगतान करना पड़ता है। जिससे महंगाई और ब्याज दरें बढ़ती हैं, जिसकी वजह से आवश्यक सेवाओं की आपूर्ति में कमी आती है। स्वास्थ्य, शिक्षा और पुलिस व्यवस्था में व्यापक रिक्तियां इसका प्रमाण है। इसलिए इस समय की सबसे ज्वलंत मांग यह है कि चुनावी रेवड़ियों और जन कल्याणकारी योजनाओं का भेद स्पष्ट होना चाहिए। पूर्व सीजेआई डी वाई चंद्रचूड़, जस्टिस जे बी पारदीवाला और जस्टिस मनोज मिश्रा की पीठ ने मध्य प्रदेश के सामाजिक कार्यकर्ता भट्टूलाल जैन की याचिका पर केंद्र सरकार राजस्थान, मध्य प्रदेश और चुनाव आयोग को नोटिस जारी कर चार हफ्ते में जवाब मांगा था। साथ ही पीठ ने

चुनावी रेवड़ियों से संबंधित अन्य याचिकाओ को भाजपा नेता अश्विनी उपाध्याय की लंबित याचिका के साथ जोड़ दिया था। उपाध्याय की याचिका में चुनाव आयोग को उन दलों का चुनाव चिन्ह जब्त करने और पंजीकरण रद्द करने का निर्देश देने की मांग की गई थी, जो चुनाव से पहले अतार्किक मुक्त रेवड़ियां देने का वादा करते या वितरित करते हैं। इस याचिका में वही सामाजिक कार्यकर्ता भट्टूलाल जैन ने कहा कि "जनहित क्या है और क्या नहीं है? इसमें एक रेखा खींचनी होगी। क्योंकि सरकारों को नगदी बांटने की अनुमति देने से ज्यादा क्रूर कुछ नहीं है। चुनाव से 6 माह पहले यह चीज शुरू हो जाती हैं, आखिरी इसका बोझ करदाताओं पर ही पड़ता है जो देश के लिए ठीक नहीं, इसलिए सार्वजनिक नीति से चुनावी रेवड़ियां बांटने का वादा भारतीय दंड संहिता के तहत प्राप्त होना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने पुनः 12 फरवरी 2025 को चुनावी रेवड़ियों के मुद्दे पर सुनवाई करते हुए राजनीतिक दलों की घोषणाओं पर सवाल उठाते हुए कहा था कि चुनावों के दौरान मुफ्त की स्कीमों की घोषणा किए जाने के कारण लोग काम करने से बच रहे हैं और देश के विकास में हिस्सा नहीं ले रहे हैं। जस्टिस बीआर गवई ने कहा कि, "दुर्भाग्य की बात है कि मुफ्त में मिलने वाली चीजों के कारण.... लोग काम करने से बचने लगे हैं। उन्हें मुफ्त में राशन मिल रहा है। उन्हें बिना कुछ काम किए ही पैसे मिल रहे हैं।" कोर्ट ने यह भी टिप्पणी की कि लोगों को मुक्त की रेवड़ियां देने के बजाय, उन्हें राष्ट्र के विकास में योगदान देने के लिए प्रेरित कर के, समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जाए, ताकि वे राष्ट्र के लिए परजीवियों का एक वर्ग न बने रहें?" दुर्भाग्य से इन मुफ्त सुविधाओं की वजह से, जो चुनावों के ठीक पहले घोषित की जाती हैं... कोई लाडली बहना, कोई दूसरी योजना, इस वजह से लोग काम करने को तैयार नहीं हैं। बता दें कि यह पहली बार नहीं है जब मुफ्त की योजनाओं पर सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र को घेरा है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हम बेघर लोगों के लिए आपकी चिंता की सराहना करते हैं, लेकिन क्या उन्हें समाज की मुख्यधारा का हिस्सा बनाना और उन्हें राष्ट्र के विकास में योगदान देने की अनुमति देना बेहतर नहीं होगा। अगर सरकार को मुक्त की चीजों को सही मायने में जनता को देना ही है, तो शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी चीजों को दे, ताकि इन मुक्त की सुविधाओं का लाभ उठा कर जनता अपना और राष्ट्र दोनों का विकास कर सकें। इस प्रकार लोगों को मुक्त की शिक्षा व स्वास्थ्य मिलने से उनके कौशल का तो विकस होगा ही, साथ ही राष्ट्र निर्माण में भी उनकी एक तरह से महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

जनता की चिंता कई बार सार्वजनिक और करदाताओं का पैसा खर्च करने के मामले में सरकारी दूरदर्शिता की कमी के कारण पैदा गुस्से के रूप में भी सामने आता है। क्या चुने हुए जनप्रतिनिधियों के पास इतना समय और ऐसी सोच है कि वह करदाताओं के पैसा खर्च करने के मुद्दे पर बहस करें? राज्य सरकारों का अब तक का ट्रैक रिकार्ड बताता है कि जनप्रतिनिधियों के पास अपनी जनता के बारे में सोचने, सत्तारूढ़ सरकारों के दावों का खंडन करने, सरकारी फंड पर बहस करने और योजनाओं को लागू करने का समय न के बराबर है।

मतदान का प्रतिशत बढ़ाने के लिए जरूरी है कि देश का हर नागरिक मतदान के महत्व से परिचित हो। हालांकि निर्वाचन आयोग समय-समय पर मजबूत लोकतंत्र के लिए चुनावी साक्षरता पर जोर देता रहा है तथा मतदाताओं को मतदान के महत्व को बताकर निष्पक्ष एवं तार्किक रूप से मतदान करने की शिक्षा देता रहा है। फिर भी 21वीं शताब्दी में मतदान प्रतिशत बढ़ाने के लिए निर्वाचन आयोग को एक और पहल अर्थात ऑनलाइन मतदान की व्यवस्था भी करनी चाहिए ताकि मतदाता मोबाइल में आधार नंबर और मतदाता क्रमांक डालकर अपने प्रत्याशी को चुन सके। सिस्टम में यह व्यवस्था रहे कि एक बार मतदान करने के बाद कोई दोबारा वोट न डाल सके। साथ ही जो लोग तकनीकी रूप से समृद्ध नहीं है, उनके लिए ऑफलाइन वोटिंग की व्यवस्था भी रहे, लेकिन उन्हें भी तकनीकी रूप से सक्षम बनाने का प्रयास किया जाता रहे। अगर निर्वाचन आयोग ऑनलाइन मतदान की व्यवस्था करता है तो मतदान का प्रतिशत बढ़ सकता है, जो लोकतंत्र के लिए अच्छा संकेत होगा। अभी बमुश्किल 40 से 50% लोग ही वोट डालने जाते हैं क्योंकि कई लोग लंबी-लंबी कतारों में लगना नहीं चाहते हैं। ऑनलाइन वोटिंग सिस्टम से लोग घर बैठे मतदान कर सकेंगे, जिससे सही मायने में बहुमत के आधार पर एक सही प्रत्याशी का चयन भी किया जा सकेगा।

लोकतंत्र में चुनाव के माध्यम से निर्वाचित प्रतिनिधि कई बार सत्ता में आने के लिए बड़े-बड़े वादे करते हैं, जिनके झांसे में आ कर मतदाता अपना वोट संबंधित व्यक्ति एवं राजनीतिक दल को दे देता है, लेकिन सत्ता में आने के बाद प्रतिनिधि अपने किए गए बड़े बड़े वादों को भूल जाते हैं। इसलिए मतदाता के पास यह अधिकार भी होना चाहिए कि वह अपने प्रत्याशी को 5 वर्ष के पूर्व भी बुला सके तथा उस पद के लिए फिर से मतदान की व्यवस्था की जानी चाहिए। अगर यह अनिवार्य व्यवस्था हो जाए तो कोई भी प्रतिनिधि या राजनीतिक पार्टी हवा हवाई घोषणाएं करने से बचेंगे या न करने का प्रयास करेंगे।

कोरोना काल में बुजुर्गों के लिए शुरू की गई डोर टू डोर योजना को आगे और बड़े स्तर पर चालू रखना चाहिए, जो वोटिंग प्रतिशत को बढ़ाएगी। साथ चुनाव को अधिक महंगा होने से रोकने के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए कि सारे राजनीतिक दल वर्चुअल सभाए करें और अगर ऑफलाइन सभा करनी हो, तो सभी दलों की संयुक्त सभाएं होनी चाहिए ऐसी व्यवस्था करने से फिजूल खर्ची पर रोक लगेगी। मिजोरम का चुनाव देश के बाकी राज्यों से बिल्कुल भिन्न होता है, क्योंकि वहां बड़ी-बड़ी रैलियां नहीं होती, न ही बड़े रोड शो के आयोजन की परंपरा है, न ही राजनीतिक हिंसा का इतिहास है, जबकि देश के दूसरे राज्यों में विधानसभा चुनाव तो छोड़िए पंचायत चुनाव में भी जमकर हिंसा देखी जा सकती है। इसलिए मिजोरम में लोग लोकतंत्र के पर्व में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। इस प्रकार भारत के अन्य राज्यों एवं केंद्र के राजनीतिक दलों द्वारा अनुशासन बनाए रखने के लिए मिजोरम से सीख ली जा सकती है। साथ ही दूसरे राज्यों की तुलना में मिजोरम में वोट प्रतिशत भी अधिक होता है। यही नहीं मिजोरम में चुनाव जीतने के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति जैसी परीक्षा से होकर गुजरना पड़ता है, जिसके अंतर्गत सभी पार्टियों के

उम्मीदवारों को अपनी बात कहने का मौका दिया जाता है, जैसा कि अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनाव में दिया जाता है। एक स्थान पर मुख्य पार्टियों के उम्मीदवारों को बुलाया जाता है, जहां जनता उनसे सवाल करती है। सवाल यह है कि मिजोरम जैसे चुनाव देश के दूसरे राज्यों में शांतिपूर्ण क्यों नहीं हो सकते?

भारत की गिनती सबसे सफल लोकतंत्रों में होती है, तो उसमें सबसे अहम भूमिका निर्वाचन आयोग की भी बनती है। चुनाव सुधारो को लेकर सबसे साहसिक कदम उठाने वाले चुनाव आयुक्तों में सबसे पहले दिवंगत टी एन शेषन का नाम आता है। वर्तमान में मुख्य सवाल यह है कि टी एन शेषन के बाद अगला कोई भी चुनाव आयुक्त, क्यों टी एन शेषन की तरह चुनाव आयोग में सुधार से पीछे हटते रहे हैं? आखिर कौन उन्हें टी एन शेषन बनने से रोकता है, जबकि चुनाव आयोग एक स्वायत्त संवैधानिक संस्था है। वर्तमान समय में कई ऐसे आख्यान मौजूद हैं जब राजनीतिक दलों और सरकारों के आगे चुनाव आयोग बेबस नजर आता है। अभी कुछ समय पहले सुप्रीम कोर्ट की पांच सदस्य संविधान पीठ ने स्वैच्छिक सेवानिवृत लेने वाले भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी अरुण गोयल की चुनाव आयुक्त के रूप में नियुक्ति पर हैरत जताई थी। संविधान के अनुच्छेद 324 (2) के अनुसार राष्ट्रपति चुनाव आयुक्त की नियुक्त करते हैं यानी चुनाव आयुक्त की नियुक्ति पूरी तरह से सरकार के हाथ में है, जो एक तरह से चुनाव आयुक्त के निष्पक्ष होने को लेकर संदेह पैदा करता है। वैसे चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति के संदर्भ में सुधार के लिए संविधान में ही अनुच्छेद 324 दिया गया है, जिसके आधार पर अभी हाल ही में संसद ने एक कानून बनाया है। हालांकि विधि आयोग ने 2015 की अपनी रिपोर्ट में मुख्य चुनाव आयुक्त तथा अन्य आयुक्तों की नियुक्ति के लिए प्रधानमंत्री, नेता प्रतिपक्ष और प्रधान न्यायाधीश की कमेटी के बहुमत के आधार पर चुनने की बात की थी। बाद में सुप्रीम कोर्ट में जस्टिस के एम जोसेफ की अगुवाई वाली पांच सदस्यीय संविधान पीठ ने भी यह सुझाव दिया था की मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति प्रक्रिया में सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश को भी शामिल किया जाना चाहिए। कहने की जरूरत नहीं है कि देश की लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जुड़ा यह मुद्दा कहीं कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच टकराव का कारण न बन जाए। आज जिस गति से चुनाव आयोग की निष्पक्षता को लेकर लोगों का विश्वास कम हो रहा है उसे रोकने की सख्त जरूरत है क्योंकि एक निष्पक्ष चुनाव आयोग न होने से, चुनाव आयोग निम्न प्रकार से चुनाव को प्रभावित कर सकता है- जैसे एक सत्ताधारी पार्टी की सुविधानुसार चुनाव की तारीखों व चरणों का ऐलान कर के, लंबा चुनाव कराकर जो पैसे वाली पार्टियों के लिए लाभकारी होगा, मतदाता सूची में नाम जोड़ने या घटाने को लेकर सवाल, आचार संहिता पर अमल को लेकर आयोग पर पक्षपात का आरोप, सत्तारूढ़ दल के नेताओं के भाषणों की अनदेखी करके, विपक्षी दलों के नेताओं के भाषणों पर नोटिस जारी करना, साथ ही ई वी एम को लेकर भी संदेह उठाते रहते हैं, जिन्हें कोई निष्पक्ष चुनाव आयुक्त ही हल कर सकता है। टीएन शेषन ने तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिम्हा राव के सामने कहा था कि "यह गलतफहमी किसी को नहीं रहनी चाहिए कि टी एन शेषन घोड़ा है और प्रधानमंत्री घुड़सवार, क्या वैसी हिम्मत अब कोई मुख्य चुनाव आयुक्त कर

सकते हैं?" वर्तमान समय में यह हिम्मत तभी कोई मुख्य चुनाव आयुक्त कर सकता है, जब उसकी नियुक्ति सत्तारूढ़ दल के अधिकार क्षेत्र से बाहर एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था द्वारा की जायेगी।

मार्च 2023 में सरकार चुनाव आयुक्त के चयन के लिए एक नया विधेयक लेकर आई है। जिसे 12 दिसंबर 2023 को राज्यसभा ने मुख्य चुनाव आयुक्त व चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति से संबंधित विधेयक को मंजूरी दे दी है। साथ ही मुख्य चुनाव आयुक्त व चुनाव आयुक्तों के वेतन भक्तों व सुविधाओं को सुप्रीम कोर्ट के जजों के बराबर बनाए रखा है। साथ ही चुनाव आयुक्त को संरक्षण देते हुए व्यवस्था की गई है कि चुनाव दायित्वों के निर्वहन के दौरान किए गए उनके फैसलों के खिलाफ कोई प्राथमिकी नहीं हो सकेगी, न ही किसी न्यायालय में चुनौती दी जा सकेगी। इस विधेयक के अनुसार मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य चुनाव आयुक्तों का चयन प्रधानमंत्री, लोकसभा में नेता विपक्ष और पीएम की तरफ से नामित कैबिनेट मंत्री वाली समिति करेगी। यह विधेयक प्रारंभिक चरण में ही चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति को पारदर्शी बनाने में कमी की है। इस समिति का निर्णय बहुमत से लिया जाएगा। हालांकि इस समिति को देखने से यह बिल्कुल साफ है कि दो का झुकाव हमेशा एक तरफ ही रहेगा, जो चुनाव आयुक्त के निष्पक्षता पर पुनः सवाल खड़ा करेगा। जबकि सुप्रीम कोर्ट ने मार्च 2023 के अपने फैसले में कहा था कि चयन समिति में पीएम, नेता प्रतिपक्ष और देश के मुख्य न्यायाधीश को शामिल किया जाना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश के एम जोसेफ की संविधान पीठ ने अरुण गोयल की नियुक्ति के प्रश्न पर कहा था कि हमें ऐसे मुख्य चुनाव आयुक्त की जरूरत है, जो पीएम के खिलाफ भी कार्रवाई पूरी निष्पक्षता के साथ करें। चुनाव आयुक्तों को राजनीतिक प्रभाव से अछूता होना चाहिए। इसलिए पीठ ने कहा था की नियुक्ति के लिए परामर्श प्रक्रिया में सीजेआई को शामिल किया जाना चाहिए, इससे चुनाव आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित होगी। साथ ही पारदर्शिता भी बढ़ेगी। चूंकि कोई भी राजनीतिक पार्टी सत्ता में बनी रहना चाहती है, अतः वह अपनी पसंद के व्यक्ति को ही मुख्य चुनाव आयुक्त एवं चुनाव आयुक्तों के रूप में नियुक्त करना चाहती हैं।

हालांकि मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (नियुक्ति, सेवा की शर्तें और कार्यकाल) अधिनियम, 2023 को असंवैधानिक घोषित करने के लिए सुप्रीम कोर्ट में एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स नामक एनजीओ ने याचिका डाल रखी है। वर्तमान चुनावी बांड योजना जिसकी शुरुआत जनवरी 20018 से हुई, के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने कहा था कि चुनावी बांड योजना पूरी तरह से नहीं बल्कि चयनात्मक रूप से गोपनी है। क्योंकि सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों के पास विपक्षी दलों को धन देने वाले दानदाताओं के बारे में गोपनीय जानकारी मिल सकती है, लेकिन विपक्षी दलों को ऐसी जानकारी नहीं मिल सकती। पूर्व सीजेआई डी य चंद्रचूड़ ने मौखिक टिप्पणी करते हुए केंद्र सरकार से कहा था कि अगर आप वास्तव में चुनावी बांड योजना को निष्पक्षता से लागू करना चाहते हैं, तो क्यों न चुनावी बांड से मिलने वाली सारी राशि निर्वाचन आयोग को दे देते ताकि वहां से सभी दलों को न्याय संगत आधार पर बांड बांटे जा सकें। पूर्व चीफ जस्टिस चंद्रचूड़ ने यह सवाल भी उठाए कि जो

आदमी बांड खरीद रहा है, वही असली दानकर्ता है, यह कैसे पता चलेगा? हो सकता है कि खरीददार दानकर्ता न हो। खरीदार की बैलेंस शीट में तो खरीद की रकम दिखाई देगी लेकिन असली दानकर्ता की बैलेंस शीट में नहीं। यह भी पता नहीं चलेगा कि वह कौन सा बॉन्ड खरीदा? उसमें यही पता चलेगा कि कितने बांड खरीदे। खरीद की रकम का स्रोत भी नहीं पता चलेगा, न दानकर्ता का ही। इन सवालों के जवाब अभी तक चुनावी बांड योजना में नहीं दिए गए, जो एक तरह से स्वतंत्र लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिए बाधा के समान हैं अतः इन्हें दूर करने की कोशिश की जानी चाहिए।

भारत में इस समय तीन स्तर पर शासन व्यवस्था काम कर रही है केंद्र सरकार, राज्य सरकार और ग्राम पंचायत। पिछले सात दशकों में हमारा लोकतंत्र राजनीतिक दलों और पार्टियों का पर्याय बन चुका है। आज पार्टी सिस्टम ने लोकतंत्र पर कब्जा कर लिया है। जितना अधिक ये राजनीतिक दल जनता का ध्रुवीकरण करने में सक्षम होते जाएंगे हैं उतना ही ज्यादा यह फलते फूलते रहेंगे हैं। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश इत्यादि में चुनी हुई सरकारों को कैसे जनता के मतों को धता बताते हुए धन, पावर गेम का खुलेआम प्रदर्शन करते हुए अदला बदली होती रही है। आज लोगों को खेमों में बांटना व वैमनस्य पैदा करना, अपनी राजनीति चमकाना दलीय राजनीति का अभिन्न अंग बन गया है। यह सब विचारणीय प्रश्न हैं। सवाल यही उठता है कि क्या यही लोकतंत्र की असली अवधारणा है? क्या यही लोकतंत्र में हम चाहते हैं? तो इसका स्पष्ट उत्तर है नहीं। इस समय भारतीय लोकतंत्र के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है सहभागी लोकतंत्र का एक परिष्कृत मॉडल। एक ऐसा लोकतंत्र जो नीचे से ऊपर की ओर बहता हो, न कि जेपी के शब्दों में उलटे पिरामिड की भांति खड़ा रहे। लोकतंत्र का मुख्य उद्देश्य लोगों की इच्छा को सर्वोपरि रखना तथा संवैधानिक गणतंत्र का उद्देश्य लोगों को तानाशाही के चंगुल से बचाना है।

लोकतंत्र में चुनाव ही वह माध्यम हैं, जिनसे देश में सरकार का निर्माण किया जाता है। लेकिन बार बार होने वाले चुनाव भी लोकतंत्र के लिए ठीक नहीं होते हैं क्योंकि चुनाव के समय आचार संहिता लागू हो जाती है जो सरकार के जन कल्याणकारी कार्यों में रोक लगाती है। इस कमी को दूर करने के लिए वर्तमान सरकार एक देश एक चुनाव से संबंधित संविधान संशोधन ला रही है। देश में एक साथ चुनाव कराने की बहस बहुत पुरानी है, हालांकि प्रथम आम चुनाव से लेकर कर 1967 तक देश भर में लोकसभा एवं विधानसभाओं के चुनाव एक साथ होते रहे हैं, लेकिन बाद में राज्यों में राष्ट्रपति शासन, मध्यावधि चुनाव इत्यादि कारणों से एक साथ चुनाव की प्रक्रिया समाप्त हो गई थी। इसे पुनः कानूनी रूप देने की कोशिश वर्तमान सरकार द्वारा की जा रही है। इस संदर्भ में पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टीएस कृष्णमूर्ति ने कहा था कि लोकसभा और राज्य विधानसभाओं का चुनाव एक साथ करना जरूरी है क्योंकि इसके कई फायदे हैं जैसे- चुनाव खर्च का कम होना, समय एवं सरकारी कर्मचारियों का सदुपयोग हो सकेगा, साथ ही प्रचार वगैरा में इतना समय बर्बाद नहीं होगा। हालांकि एक देश एक चुनाव कराना अब इतना आसान भी नहीं होगा क्योंकि इसके लिए राजनीतिक सहमति का होना भी आवश्यक है। इस बात के पर्याप्त सबूत है कि राज्य चुनाव और

संसदीय चुनाव एक साथ होने पर भी मतदाता अलग-अलग तरीके से मतदान करेंगे जैसा कि अभी तक हुए चुनावों में दिखाई देता रहा है। कृष्णमूर्ति ने यह भी कहा था कि एक साथ चुनाव कराने पर निम्न चुनौतियों का भी सामना देश को करना पड़ेगा जैसे इससे एक साथ बहुत अधिक वित्तीय व्यय, पर्याप्त सशस्त्र बल और जन शक्ति की भी आवश्यकता होगी, लेकिन ये ऐसे मुद्दे हैं जिन पर काबू पाया जा सकता है। संवैधानिक मुद्दे सबसे बड़ी चुनौती होंगे जो संविधान के कई अनुच्छेदों में संशोधन के रूप में दिखाई देंगे। संविधान का अनुच्छेद 83 कहता है कि लोकसभा का कार्यकाल 5 साल का होगा। हालांकि अनुच्छेद 83 (2) के तहत विधानसभा का कार्यकाल एक बार में एक साल ही बढ़ाया जा सकता है। अनुच्छेद 85 में राष्ट्रपति को समय से पहले लोकसभा भंग करने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 172 में विधानसभा का कार्यकाल 5 वर्ष निश्चित किया गया है। अनुच्छेद 174 के तहत राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यपाल को विधानसभा भंग करने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 356 में राज्यपाल की सिफारिश पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने का प्रावधान है। एक देश एक चुनाव के लिए उपयुक्त अनुच्छेदों में संशोधन करना पड़ेगा। साथ ही विपक्ष यह आरोप भी लगा रहा है कि यह व्यवस्था देश के संघीय ढांचे के लिए खतरा पैदा करेगा।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि लोकतंत्र जनता के लिए सबसे अच्छी शासन व्यवस्था होते हुए भी इसके सम्मुख अनेक समस्याएं मुंह बाय खड़ी हैं जिन्हें दूर कर के इसे सही मायने में जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन बना सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- भालचंद्र मुंगेकर की पुस्तक माई एनकाउंटर इन पार्लियामेंट
- न्यायपालिका के निर्णयों की विवेचना
- शंकर अय्यर “जनता के, पैसे के इस्तेमाल पर बहस कब?”
- समसामयिक पत्रिका एवं दैनिक समाचार।
- द इंडियन कांस्टीट्यूशन: कॉर्नरस्टोन ऑफ़ द नेशन ग्रेनविले ऑस्टिन।
- भारत का संविधान :एक परिचय डॉ. दुर्गा दास बसु
- राजेंद्र द्विवेदी ‘आंकड़ों का लोकतंत्र : लोकसभा चुनाव 1952-2024,’ कौटिल्य बुक्स, जुलाई 2023